

‘ग्लोबल गाँव के देवता’ : औद्योगीकरण की आँधी में उजड़ते गाँव

कमल सिन्हा (शोधार्थी)

भाषा अध्ययन शाला

देवी अहिल्या विश्वविद्यालय

इंदौर, मध्यप्रदेश, भारत

शोध संक्षेप

प्रत्येक राष्ट्र की एक विशिष्ट पहचान होती है जो दूसरे से भिन्न बनाती है। संस्कृति, समाज, कला एवं साहित्य किसी राष्ट्र के चरित्र के मूल तत्व हैं। इन सभी तत्वों में भी सर्वाधिक महत्व साहित्य का है। संस्कृति, समाज एवं कला व राष्ट्र के प्रत्येक अवयव को व्यक्त करने में सक्षम है। भारत को एक स्वर से सभी ने गाँवों का देश स्वीकार किया है। शहर जहाँ पाश्चात्य का अंधानुकरण कर भारतीय मूल्यों के त्याग में गर्व का अनुभव कर रहे हैं ऐसे में गाँव ही है जहाँ आज भी भारतीय संस्कृति एवं मूल्य जीवित हैं। प्रस्तुत शोध पत्र में रणेंद्र के उपन्यास ‘ग्लोबल गाँव के देवता’ में अभिव्यक्त भूमंडलीकरण के बढ़ते प्रभाव का विश्लेषण किया गया है।

प्रस्तावना

ग्रामीण जीवन को केंद्र में रखकर उपन्यास लिखने की शुरुआत विदेशी साहित्यकारों ने की। “उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में जब अमेरिकी उपन्यासकारों बिट हार्ट और हैरेट वीयर स्टो आदि ने सुदूर अमेरिकी अंचलों को अपनी रचनाओं को केंद्र में रखकर उपन्यास लिखे तो उनका विशेष आग्रह इस बात को लेकर था कि अंचल के व्यक्तित्व पर लेखक का मध्यवर्गीय सोच हावी नहीं होना चाहिए - लेखक के ‘विचार’ की भूमिका वहाँ नगण्य रहना चाहिए।”¹

हिन्दी उपन्यास परंपरा में गाँवों का सहज, सरल, स्वाभाविक जीवन पहली बार प्रेमचंद के रचना संसार में स्थान पाता है। ‘प्रेमाश्रम’, ‘गोदान’ आदि उपन्यासों के केंद्र में ग्रामीण कृषक जीवन ही है। किन्तु “1936 ई. में प्रेमचंद के निधन के बाद हिन्दी उपन्यास आश्चर्यजनक रूप से ग्राम विमुख हो गया था। यह स्थिति तब तक बनी रही जब तक नागार्जुन ने अपने प्रथम उपन्यास ‘रतिनाथ की चाची (1948)’ द्वारा इस गतिरोध को नहीं तोड़ा।”²

ग्राम्य जीवन व आंचलिक उपन्यास में गहरा संबंध है। हिन्दी के अधिकांश आंचलिक उपन्यासों के केंद्र में

ग्राम्य जीवन की कथा ही रही है। चाहे ‘मैला आंचल’ का ‘मेरीगंज’ हो या ‘रागदरबारी’ का ‘शिवपाल गंज’। वर्तमान समय में भारत के गाँवों के मूल (परंपरागत) चरित्र में भी बदलाव उपस्थित हो रहा है। ऐसे में साहित्य में भी उन परिवर्तनों को आधार बनाकर उपन्यास लिखे जा रहे हैं। पूंजीवाद व बाजारवाद में किस तरह आदिवासी गाँवों की तस्वीर बदली है। इसी मुद्दे को केन्द्र में रखकर ‘रणेंद्र’ ने ‘ग्लोबल गाँव के देवता’ नामक उपन्यास की रचना की है।

रणेंद्र ने झारखंड इनसाइक्लोपीडिया (चार खण्डों में) का संपादन किया। सन 2006 में कथादेश कहानी प्रतियोगिता के प्रथम पुरस्कार से उन्हें सम्मानित किया गया। रणेंद्र ने आदिवासी समुदायों की सामाजिक-सांस्कृतिक विशेषताओं, अंतः सम्बन्धों, वैश्वीकरण विकास के प्रभावों का गंभीरतापूर्वक अध्ययन किया है। यही कारण है कि उनका उपन्यास ‘ग्लोबल गाँव के देवता’ बेहद प्रमाणिक बन पड़ा है।

‘ग्लोबल गाँव के देवता’ में ग्राम्य जीवन

“सामाजिक संरचना की मुख्य इकाइयां- जाति, संप्रदाय अथवा धार्मिक समुदाय और परिवार तथा नातेदारी समूह अकेले अलग-थलक रहकर काम नहीं करती।

सहयोग के साथ-साथ ग्राम संघर्ष समाधान और सामाजिक गोलबंदी के उसके अपने परंपरागत तरीके हैं। दूसरी ओर अनेक गांवों में व्यापक गुटबंदी और लगातार चलते रहने वाले विवाद उनकी विशेषता है।³ उपन्यास के केन्द्र में भौरापाट व उससे सटे हुए कन्दापाट व अम्बाटोली के असुर ग्राम है। डॉ. श्यामाचरण दुबे द्वारा उद्धृत सभी विशेषताएँ उपन्यास में लक्षित होती हैं। गांव में अंधविश्वासों व मिथकों का विशेष प्रचलन होता है। रणेन्द्र ने उपन्यास में असुर गांवों में प्रचलित ऐसे अनेक अंधविश्वासों का चित्रण किया है। “दरअसल, अब भी कुछ लोगों के मन में यह बात बैठी हुई है कि धान को आदमी के खून में सानकर बिछड़ा डालने से फसल बहुत अच्छी होती है।”⁴ आज भी अनेक गांवों में बलि प्रथा प्रचलित है। विशेषकर आदिवासी गांवों में यह मान्यता है कि देवता को प्रसन्न करने हेतु बलि की आवश्यकता होती है। उपन्यास में एक गांव कटिया का उल्लेख है, जहां कुछ वर्षों पूर्व तक ‘नर बलि’ की प्रथा प्रचलित थी।

गांवों में विकास की सच्चाई

गांवों के विकास को लेकर प्रत्येक सरकार बड़े-बड़े दावे एवं घोषणाएं करती है। सर्वोदय, अंत्योदय जैसे नारे देती है। यह उपन्यास गांवों के विकास की सच्ची पड़ताल करता हुआ नजर आता है। “इस पाट पर जीना बहुत कठिन है मास्टर साब। किन्तु मौत बड़ी आसान है।..... देखिएगा कि मक्का की एक बरसाती फसल के भरोसे जिन्दगी कितनी कठिन हो जाती है।”⁵ उपन्यास के एक पात्र रूमझुम असुर मास्टर को बताते हैं कि उनकी औरतों की आधी जिन्दगी पानी और जलावन की व्यवस्था करने में ही बीत जाती है। उनकी स्थिति इतनी बदतर है कि “ज्यादातर घरों में भात-दाल सब्जी भी पर्व-त्योहार का भोजन है।”⁶ अधिकांश असुरों के पास इतनी जमीन भी नहीं थी कि वे साल भर खाने के लिए मक्का उगा सके। इस गरीबी की वजह से वे इतने लाचार हो गए कि उनकी सामाजिक व्यवस्था चरमरा गयी।

विकास के नाम पर वहां बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने अपने कार्यालय स्थापित कर उनके खनिज व अन्य प्राकृतिक संसाधनों का भरपूर दोहन किया। बदले में असुर गांवों

को विकास के नाम पर मिलता है बंद खदानों के बड़े-बड़े गड्ढे जिनमें बरसात में पानी भर जाता है। यह दूषित पानी अनेक बीमारियों को जन्म देता है। “हमारे होश में चार दर्जन से ज्यादा नयी उमर के लड़के माथा बुखार-सेरेब्रल मलेरिया से मरे हैं। बूढ़े-बुजुर्गों की तो गिनती ही नहीं। हमारे दुख से इन्हें क्या, इनको तो बस अपने मुनाफे से मतलब है।”⁷ असुर गांवों के विकास की हकीकत यह है कि विकास के नाम पर असुरों ने केवल कम्बल, मच्छरदानी, बकरी और ज्यादा से ज्यादा इंदिरा आवास देखा था। यही स्थिति कमोबेश भारत के प्रत्येक गांवों की है।

ग्राम्य समाज की एक और विशेषता है न्यून साक्षरता दर। गांवों में अधिकांश बच्चे बीच में ही स्कूल छोड़ देते हैं या फिर स्कूल की तो जैसे-तैसे करके पूरी कर लेते हैं, किन्तु उच्च शिक्षा को लेकर प्रायः उदासीन रहते हैं। कमोबेश यही स्थिति उपन्यास में चित्रित असुर गांवों की भी है। रूमझुम, सुनील, ललिता, सोमा, भीखा जैसे कुछ लोग ही हैं जो उच्च शिक्षित हैं। किन्तु इसका कारण यह नहीं है कि उनमें पढ़ने की ललक नहीं है, वरन् शिक्षा के क्षेत्र में भी उनके साथ भेद-भाव जारी है। “भौरापाट का स्कूल आदिवासी बालिकाओं के लिए खोला गया था किन्तु उसमें पढ़ने वाली असुर-बिरजिया बच्चियों की संख्या दस प्रतिशत से ज्यादा नहीं थी। ज्यादातर बच्चियां हेडमिस्ट्रेस और टीचर्स के गांव की और उनकी ही जाति उरांव-खडिया, खेरवार परिवार की थी।”⁸ पाथरपाट के स्कूल का निर्माण सौ से ज्यादा असुरों के घरों को उजाड़ कर बना था। किन्तु उस स्कूल में भी पिछले तीस वर्षों में एक भी आदिम जाति के बच्चे को प्रवेश (एडमिशन) नहीं मिला था।

स्त्री चित्रण के माध्यम से लेखक ने ग्राम्य जीवन के कुछ सुन्दर चित्र खींचे हैं। उनकी दिनचर्या का वर्णन करते हुए लेखक लिखते हैं, “मुंह अंधेरे जब भुरुकुआ आकाश में टिमटिमाता रहता, सूरज के जगने में अभी देर होती, देकी जागकर अपना गीत शुरू कर देती है। दिन की रसोई के लिए धान कूटने का यही समय होता.... उनकी सुरुज देव सिंगबोंगा से ही होड़ा-होड़ी चलती कि कौन पहले दुआर पर पहुँचता है।...खेतों में

कई काम इनके ही भरोसे रहते या यों कि अधिकांश काम इनके ही भरोसे रहते।”⁹

ग्रामीण जीवन का एक महत्वपूर्ण अंग वहां की संस्कृति है। गांवों की संस्कृति शहरों की संस्कृति से बिल्कुल भिन्न होती है। रणेन्द्र ने उपन्यास में स्थान-स्थान पर ग्रामीण जीवन का चित्रण किया है। “दीवारें पहले काली मिट्टी से लिपी जातीं... सूखने के बाद उन पर सफेद मिट्टी का लेप चढ़ाया जाता। फिर पूरी हथेलियों को नचा-नचाकर एक वृत्ताकार उभारी जाती जिनमें उनके हथेलियों की छाप झलक मारती।”¹⁰

गांव की संस्कृति सामासिक संस्कृति है। जहाँ अब भी सुख दुख व्यक्तिगत न होकर ‘साझे’ होते हैं। अखड़े का वर्णन करते हुए लेखक लिखते हैं, “अखड़ा हर गांव के बीच या किनारे एक सार्वजनिक स्थल होता है, जहाँ गुरुवार के दिन गांव के सारे बुजुर्ग, समझदार, सयाने बैठते और गांव-घर-समाज की समस्या पर बतियाते। उसी अखड़ा में पर्व-त्यौहार सरहुल, हरियारी, सोहराय पर रात भर माँदर बजता।”¹¹ बच्चे के नामकरण संस्कार पर प्रचलित प्रथा का भी लेखक ने चित्रण किया है। ललिता के माध्यम से लेखक ने बताया कि आदिवासी समाज में ‘लिविंग टुगेदर’ (लिव इन रिलेशनशिप) की संस्कृति पुराने दिनों से मान्य है। इस तरह लेखक ने आदिवासी गांवों की अनछुई सांस्कृतिक पहलुओं को भी उजागर किया है। लेखक ने यह भी बताया है कि हाट ग्रामीण में केवल खरीद-बिक्री की जगह न होकर सामाजिक मेलजोल का स्थान भी होता है। हाट में दस-पन्द्रह मील के सगे-संबंधियों से भेंट होती। यही शादियाँ तय होती तो गिले-शिकवे भी कहे सुने जाते। अपनों का सर-समाचार मरनी-जीनी सबकी खबरें हाट में ही मिलती। इस प्रकार अखड़ा, हाट आदि के माध्यम से लेखक ने ग्रामीण जीवन को चित्रित किया है।

लोकगीत एवं लोककथा भी ग्रामीण संस्कृति के अभिन्न अंग हैं। ग्रामीण समाज में भिन्न-भिन्न अवसरों पर लोकगीत गाये जाते हैं। उनके गीतों में उनकी संस्कृति मुखर हो उठती है। ऐसा ही एक गीत है-

“काठी बेचे गेले असुरिन,

बाँस बेचे गेले गे,

मेठ संग नजर मिचयले

मुंशी संग लासा लगयले गे,

कचिया लोभे कुला डूबाले

रूपया लोभे जात डूबाले गे।।”

यह गीत शिकायत नहीं थी, बल्कि विलाप था। अंदर से बुरी तरह टूट चुके समाज का विलाप।

नक्सलवाद वर्तमान में एक बहुत बड़ी समस्या बन चुकी है। साथ ही यह झारखंड, छत्तीसगढ़, आंध्रप्रदेश के आदिवासी गांवों की हकीकत बन चुका है। सत्ता पक्ष किस तरह नक्सलवाद का राजनीतिकरण कर अपनी सत्ता का दुरुपयोग कर रही है इसका चित्रण उपन्यास में मिलता है। “इस बार हर हाल में गिरफ्तारी से बचना है। इस बार नक्सली वाला केस ठोंकेगा थना। वेदांग ने पूरा खिलाया है।”¹²

किस तरह पुलिस एवं प्रशासन अपनी गलती पर लीपापोती करने के लिए भोली जनता को नक्सली करार दे देती है यह इस उपन्यास में व्यक्त हुआ है। बालचन असुर जो कि एक सामान्य ग्रामीण है जब वह पुलिस द्वारा गोलाबारी में मारा जाता है व साथ ही अन्य पांच लोग मारे जाते हैं तो पुलिस सभी आंदोलनकारियों को नक्सली घोषित कर देती है। “हाँ, तीसरे पेज पर दो कालम का समाचार छपा था कि पाथरपाट में हुए पुलिस मुठभेड़ में छह नक्सली मारे गये। मारे गये नक्सलियों में कुख्यात एरिया कमांडर बालचन भी शामिल। फिर बालचन के नृशंस कारनामों का विवरण। किस एस. पी. दरोगा की हत्याओं और किन-किन बैंक डकैतियों में वह शामिल रहा था। एकदम आँखों देखा विवरण।”¹³

निष्कर्ष

वैश्वीकरण की आंधी में वैश्विक ताकतों (ग्लोबल गांव के देवताओं) के आगे हमारे गांव कितने बेबस और लाचार हैं, यह उपन्यास उसी दर्द का संतप्त सारांश है। वैश्विक गांव का जैसे-जैसे विस्तार होते जा रहा है वास्तविक गांव वैसे-वैसे ही संकुचित होते जा रहे हैं। वैश्विक गांव वास्तविक गांवों को तेजी से निगलते जा रहे हैं। वैश्वीकरण किस तरह ग्रामीण जीवन को



प्रभावित, प्रदूषित व विगलित कर रही है इसका जीवंत प्रमाण 'ग्लोबल गांव के देवता' उपन्यास है।

संदर्भ ग्रंथ

1. 'उपन्यास का विकास', मधुरेश
2. 'उपन्यास का इतिहास', गोपाल राय पृष्ठ 216
3. 'भारतीय समाज', श्यामाचरण दुबे, अनुवाद- वंदना मिश्र, 76
4. 'ग्लोबल गांव के देवता', रणेन्द्र, पृष्ठ 12
5. 'ग्लोबल गांव के देवता', रणेन्द्र, पृष्ठ 12,13
6. 'ग्लोबल गांव के देवता', रणेन्द्र, पृष्ठ 17
7. 'ग्लोबल गांव के देवता', रणेन्द्र, पृष्ठ 62
8. 'ग्लोबल गांव के देवता', रणेन्द्र, पृष्ठ 20
9. 'ग्लोबल गांव के देवता', रणेन्द्र, पृष्ठ 22
10. 'ग्लोबल गांव के देवता', रणेन्द्र, पृष्ठ 23
11. 'ग्लोबल गांव के देवता', रणेन्द्र, पृष्ठ 26
12. 'ग्लोबल गांव के देवता', रणेन्द्र, पृष्ठ 80
13. 'ग्लोबल गांव के देवता', रणेन्द्र, पृष्ठ 88